Purva Mimaansa | Refereed | Peer Reviewed
ISSN: 0976-0237 | Volume 13, Issue March 2022 | Impact Factor 4.762

पंडित दीनदयाल उपाध्यायः एक समग्र अध्ययन

सुरेंद्र सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान विभाग, आर.के.एस.डी. महाविद्यालय, कैथल (हरियाणा)

शोध सार

दीनदयाल उपाध्याय एक महान राजनीतिज्ञ, सामाजिक चिंतक एवं दार्शनिक थे, जिन्होंने भारत के विकास और सुशासन हेतु भारतीय राजनीति को एक नया प्रतिरूप प्रदान किया। वह अपने समय के उन राजनेताओं में से एक हैं जिन पर और अधिक अध्ययन किए जाने की जरूरत है। वह ऐसे विद्वान थे जिन्होंने राजनीति में एक व्यवहारिक विकल्प प्रदान करने का प्रयास किया और उस हेतु जमीन भी तैयार की, जिसकी नई पीढ़ी प्रतीक्षा कर रही थी। इस देश के सांस्कृतिक लोकाचार के निशान जो हजारों साल पुराने हैं, वे उनके दर्शन में पाए जा सकते हैं। उन्होंने न केवल सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की विचारधारा के लिए एक कैडर तैयार किया बल्कि अपने द्वारा प्रतिपादित आदर्शों को साकार करने के लिए संगठन हेतु एक मजबूत आधार भी दिया। पंडित उपाध्याय ने अपनी रचनाओं के माध्यम से स्पष्ट किया कि अंधाधुंध पाश्चात्य व्यवस्था का प्रयोग न तो उचित है और न ही व्यवहारिक, क्योंकि प्रत्येक देश की सभ्यता, संस्कृति और प्रशासनिक ढांचे में अंतर पाया जाता है। समाज के वंचित वर्गों को सशक्त बनाने और सभी के लिए सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए दीनदयाल उपाध्याय के विचारों का अध्ययन करना अधिक अनिवार्य हो जाता है। वर्तमान राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में उपाध्याय के विचारों का अवलोकन करना इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है कि वह एक महान भारतीय दार्शनिक, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, इतिहासकार, पत्रकार और राजनीतिक वैज्ञानिक थे बल्कि वह भारतीय जनसंघ के सबसे महत्वपूर्ण नेताओं में से एक थे, जिन्होंने भारतीय राजनीति को नई दिशा और दशा प्रदान की। इसमें कोई दो राय नही है कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय के आदर्शों और मूल्यों के प्रचार और अभ्यास के कारण ही भारतीय जनसंघ का विकास हुआ और बाद में भाजपा का जन्म हुआ। उसने संघ के तरीकों से पूरी तरह तालमेल बिठाते हुए, अपना जीवन संघ के माध्यम से राष्ट्र की सेवा के लिए समर्पित कर दिया। वह उन प्राथमिक नेताओं में से एक थे, जिन्होंने देश के जनमानस में न केवल राष्ट्रीयता की भावना पैदा की, बल्कि राज्य द्वारा शोषण की निंदा करने वाले व्यक्ति के रूप में भी खुद को स्थापित किया।

दीनदयाल उपाध्याय को उनके विचार एकात्म मानववाद के रूप में ज्यादा जाना जाता है। यह वह अवधारणा है जो भारतीय जन मानस में गहराई से अंतर्निहित है। एकात्म मानवतावाद का दर्शन प्रत्येक मनुष्य के शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा सभी के एक साथ ओर एकीकृत कार्यक्रम की वकालत करता है। उपाध्याय ने एकात्म मानववाद पर अपने पूना व्याख्यान में यह कार्य स्वयं के लिए निर्धारित किया था, जो आगे चलकर मनुष्य-मात्र के लिए अनुकरणीय बन गया। समाज में मनुष्य की भूमिका का निर्धारण करते हुए कहा था- ष्भारत में समकालीन राजनीति मनुष्य की समझ और समाज में उसकी भूमिका पर आधारित थी।

स्वतंत्रता के बाद के भारत के राजनीतिक नेतृत्व ने अच्छे समाज की पश्चिमी धारणाओं को भारतीय परिस्थितियों में लागू करने का प्रयास किया था, किन्तु उसके परिणाम असंतोषजनक थे। आर्थिक विकास धीमा था, बेरोजगारी और शोषण बढ़ गया था, राष्ट्रीय एकीकरण कमजोर हो गया था, और सांस्कृतिक प्रगति धीमी थीष। इसके माध्यम से उपाध्याय जी ने भारतीय राजनीतिक चिंतन और दर्शन को एक नई दिशा दी है। इसलिए उपाध्याय जी के राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालते हुए सार्वजनिक जीवन में उसके योगदान का विश्लेषण किया जाना समय की मांग है।

प्रस्तुत शोध-पत्र दीनदयाल उपाध्याय के विचारों की वर्तमान समय में क्या प्रांसगिता है विषय को लेकर लिखा गया है। सूचना, संचार एवं प्रौद्योगिकी के कारण बदलते परिवेश में क्या उनका दर्शन आज भी प्रासंगिक है? वर्तमान राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में उपाध्याय के सामाजिक, आर्थिक, राष्ट्र, राष्ट्रवाद, लोकतंत्र तथा समाजवादी चिंतन पर प्रकाश डालना भी इस अध्ययन का एक उद्देश्य हैं। ये ऐसे ज्वलंत प्रश्न है जिन्हें इस शोध-पत्र में उठाया गया है।

मुख्य शब्द :- अखंड भारत, राष्ट्रवाद, राजनीतिक और आर्थिक, एकात्म मानववाद, लोकतांत्रिक, अंत्योदय, समाजवाद, जनसंघ।

विषय प्रवेश

मानव समाज की स्थापना के बाद से इस बात पर चर्चा शुरू हुई कि कैसे जिएं और दूसरों को जीने दें। इस संबंध में कई दार्शनिकों, बुद्धिजीवियों, नेताओं और धार्मिक गुरुओं ने समय-समय पर अपने विचार रखे और अपनी अवधारणाओं में मूल्यों को जोड़ा। दीन दयाल उपाध्याय, जो एक प्रमुख भारतीय दार्शनिक, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, इतिहासकार, पत्रकार और राजनीतिक वैज्ञानिक थे, जिन्होंने एक नई अवधारणा के रूप में एकात्म मानवतावाद के सिद्धांत को विकसित किया। उनके अनुसार ष्मानव जाति में शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के चार पदानुक्रमित गुण थे, जो चार सार्वभौमिक उद्देश्यों, काम (इच्छा), अर्थ (धन), धर्म (नैतिक कर्तव्य) और मोक्ष (कुल मुक्ति) के अनुरूप थे। धर्म श्बुनियादीश है, और मोक्ष मानव जाति और समाज का श्परमश उद्देश्य है। धर्म वह धागा है जो मानव जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य श्मोक्षश के लिए श्कामश और 'अर्थ' का पालन करता है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में निहित यह चतुर्भुज पुरुषार्थ पूंजीवाद और साम्यवाद की पश्चिमी विचारधारा की तरह एकीकृत और असंतुष्ट और परस्पर विरोधी नहीं है। इस प्रकार दीनदयाल का श्एकात्म मानववादश का विचार अकेले ही समाज के समग्र और सतत विकास को सुनिश्चित कर सकता है जो व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर खुशी और शांति का मार्ग प्रशस्त करता है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के मुख्य विचारों को उनकी भारतीयता, धर्म, धर्मराज्य और अंत्योदय की अवधारणा में देखा जा सकता है। अंत्योदय, हालांकि गांधीवादी शब्दकोष से संबंधित एक शब्द है, यह पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विचारों में अंतर्निहित है। श्सभी के लिए शिक्षाश, श्हर हाथ को कामश, और श्हर खेत को पानीश की उनकी दृष्टि को उनके आर्थिक लोकतंत्र के विचार में परिणत होते देखा गया। आर्थिक लोकतंत्र के अपने विचार की व्याख्या करते हुए, वे कहते हैं, ष्यदि सभी के लिए एक वोट राजनीतिक लोकतंत्र की कसौटी है, तो सभी के लिए काम करना आर्थिक लोकतंत्र का एक पैमाना है।

उन्होंने बड़े पैमाने के उद्योग आधारित विकास, केंद्रीकरण और एकाधिकार के विचारों का विरोध करते हुए स्वदेशी और विकेंद्रीकरण की वकालत की। उन्होंने आगे कहा कि कोई भी व्यवस्था जो रोजगार के अवसर को कम करती है वह अलोकतांत्रिक है। उन्होंने सामाजिक असमानता से मुक्त एक प्रणाली की वकालत की जहां पूंजी और शक्ति का विकेंद्रीकरण हो।

इस प्रकार पंडित दीनदयाल उपाध्याय को एकात्म मानववाद के दर्शन के लिए व्यापक रूप से जाना जाता है जो भारतीय जनता पार्टी का आधिकारिक दर्शन भी है। उपाध्याय जी के अनुसार, भारत में प्राथमिक चिंता एक स्वदेशी आर्थिक मॉडल विकसित करने की होनी चाहिए, जो मनुष्य को केंद्र में रखे। एकात्म मानववाद राजनीति और स्वदेशी में नैतिकता और अर्थव्यवस्थाओं में छोटे पैमाने पर औद्योगीकरण पर आधारित है। ये अधारणाएँ सद्भाव, सांस्कृतिक राष्ट्रीय मूल्यों की प्रधानता और अनुशासन के मूल विषयों के इर्द-गिर्द घूमती हैं। इस प्रकार उपाध्याय ने प्रस्तावित किया कि भारतीय विचार समाधान में अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। उन्होंने तर्क दिया कि भारत सहित प्रत्येक राष्ट्र का एक अनूठा राष्ट्रीय आदर्श था, जिसे उसके भौतिक वातावरण और उसके सामूहिक अनुभव द्वारा आकार प्रदान किया गया था, जो उसके राजनीतिक और सामाजिक जीवन के आदर्श को सूचित करता है। इसलिए एक दार्शनिक का कार्य इस राष्ट्रीय आदर्श को प्रतिपादित करना है और राजनीतिज्ञ का कर्तव्य, उचित रूप से मानना है, अपने समय के लिए आदर्श को लागू करने के तरीकों की खोज करना है। इस प्रकार एक अच्छा समाज वह है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति या समूह राष्ट्र की भलाई को बनाए रखने के लिए कार्य करता है। न्याय में प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुकूल सामाजिक रूप से उपयोगी कार्य करता है। प्रत्येक राष्ट्र मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने स्वयं के संस्थान बनाता है। संपत्ति, संघ, धार्मिक संप्रदाय, उत्पादन के साधन, यहां तक कि राज्य भी केवल राष्ट्र के उपकरण हैं। ऐतिहासिक रूप से राष्ट्र से जुड़े भौगोलिक क्षेत्र के भीतर लोगों की प्राकृतिक इच्छा राजनीतिक रूप से एकजुट होने की है। उपाध्याय के विचार में, राज्य एक प्रकार के सामाजिक अनुबंध द्वारा अस्तित्व में आता है जिसका उपयोग राष्ट्र अपनी रक्षा और बुनियादी मानवीय जरूरतों को पूरा करने के लिए करता है। यदि सरकार का एक विशेष रूप उन लक्ष्यों को पर्याप्त रूप से पूरा करने में विफल रहता है, तो राष्ट्र को सरकार का एक नया रूप अपनाने का अधिकार है। उसका मानना था कि मूल प्रवृत्तियों के लिए साम्यवाद और पूंजीवाद नाजायज हैं, क्योंकि ये दोनों मनुष्य की आधारभूत प्रवृत्तियों को आकर्षित करके सामाजिक संघर्ष को प्रोत्साहित करते हैं। इसी तरह, वर्तमान जाति व्यवस्था एक त्रुटिपूर्ण संस्था है क्योंकि यह सामाजिक तनाव को बढ़ावा देती है, भले ही यह पहले के युग में मान्य हो, जब स्थितियां अलग थीं। उनका तर्क है कि वर्तमान आर्थिक प्रणाली, जो आय में व्यापक असमानता और उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण की अनुमति देती है, अप्राकृतिक है, क्योंकि इसके परिणामस्वरूप शोषण, शारीरिक पीड़ा होती है जो देश के भाईचारे के बंधन को कमजोर करता है। सामाजिक सौहार्द के लिए जनसंघ ने प्रस्तावित किया कि अधिकतम आय न्यूनतम से दस गुना अधिक नहीं होनी चाहिए।

उपाध्याय राजनीतिक शक्ति और आर्थिक व्यवस्था के विकेंद्रीकरण के पक्षधर थे। इसी मकसद ने उन्होंने उत्पादन के साधनों पर श्रमिकों के नियंत्रण का समर्थन करने के लिए प्रेरित किया। वो छोटे पैमाने के उद्यमों के व्यक्तिगत स्वामित्व तथा बड़े जटिल उद्योगों के सहकारी स्वामित्व के पक्षधर थे। किसी तरह के

लोकलुभावन मकसद को उनकी मातृभाषा में शिक्षा के लिए उनके आह्वान में पहचाना जा सकता है। उनके विचार में, अंग्रेजी शिक्षा ने वर्ग भेद पैदा करने का प्रयास किया, जिसने समुदाय की भावना को कमजोर कर दिया। दीनदयाल उपाध्याय एक सफल आयोजक, कुशल राजनीतिज्ञ, राष्ट्र सेवा में समर्पित धनी व्यक्तित्व थे। युवावस्था में पढ़ाई के दौरान ही वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) में शामिल हो गए और बाद में पूर्णकालिक कार्यकर्ता के रूप में काम किया। दो संगठनों के बीच एक परंपरा और सामंजस्य बनने के लिए, उपाध्याय को भारतीय जन संघ (बीजेएस) का दायित्व दिया गया था। जब डॉ श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने आरएसएस नेतृत्व के साथ परामर्श के बाद पार्टी की स्थापना की थी तब उन्हें पार्टी का महासचिव बनाया गया। पंडित उपाध्याय ने अटल बिहारी वाजपेयी, लालकृष्ण आडवाणी, नानाजी देशमुख और कई अन्य नेताओं को तैयार किया, जिन्होंने बीजेएस और बाद में भारतीय जनता पार्टी को नई ऊंचाइयों पर पहुंचाया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की विचारधारा तब परवान चढ़ी, जब उपाध्याय जी के करीबी सहयोगी और विश्वासपात्र अटल बिहारी वाजपेयी 1996 में देश के प्रधानमंत्री बने और वे इस पद को संभालने वाले भारत के पहले गैर-कांग्रेसी नेता थे। पंडित उपाध्याय एक चतुर राजनीतिक रणनीतिकार थे, जिन्होंने गठबंधन की राजनीति के महत्व को महसूस किया, जिसे आने वाले दशकों में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी थी। राम मनोहर लोहिया, चरण सिंह के साथ, उन्होंने पहले 1963 में और बाद में 1967 में कांग्रेस के खिलाफ गठबंधन किया, जिसके परिणामस्वरूप नौ राज्यों से कांग्रेस की सरकारों का पतन हुआ। यह भारतीय राजनीतिक इतिहास में एक मील का पत्थर था क्योंकि इसने राजनीतिक प्रचलन में बहुलता के लिए जगह बनाई और इस विश्वास को तोड़ दिया कि कांग्रेस अजेय थी। सन् 1977 में, गैर-कांग्रेसी विकल्प के उनके सपने ने आकार लिया, जब मोरारजी देसाई के नेतृत्व में जनता पार्टी ने केंद्र में सरकार बनाई। पंडित दीनदयाल उपाध्याय उन असाधारण व्यक्तित्वों में से एक थे जिन्होंने आधुनिक भारतीय राजनीति को मानवता की जैविक नींव पर खड़े होने के लिए प्रेरित किया। लेकिन विडंबना यह है कि दीनदयाल उपाध्याय को अभी तक भारत के बौद्धिक और राजनीतिक इतिहास में उचित स्थान नहीं मिला है, जिसका वह वास्तव में हकदार था।

1. एकात्म मानववाद संबंधी विचार

पंडित उपाध्याय ने एकात्म मानववाद के नाम से जाने जाने वाले विचारों का एक समूह प्रतिपादित किया। उन्होंने अप्रैल, 1965 में पुणे में दिए गए अपने चार व्याख्यानों में इसे एक व्यवस्थित रूप से परिभाषित किया था। इस मामले पर उनकी सोच के तत्वों को जनसंघ में चर्चा के लिए पहले ही प्रस्तुत किया जा चुका था और जनवरी 1965 में विजयवाड़ा में पार्टी के मौलिक वैचारिक बयान के रूप में अपनाया गया था। उपाध्याय ने दिसंबर, 1967 में कालीकट में जनसंघ के 14वें वार्षिक सत्र में अपने अध्यक्षीय भाषण में व्यावहारिक राजनीति में एकात्म मानववाद को लागू करने के लिए व्यवस्थित रूप से शुरुआत की। उपाध्याय के लिए, कोई भी प्रणाली जिसमें मनुष्य प्रधानता प्राप्त नहीं करता है, अंततः उसका पतन निश्चित है। एकात्म मानववाद के रूप में उनका बौद्धिक प्रवचन मनुष्य के स्थान को सही परिप्रेक्ष्य में फिर से स्थापित करता है और उसे एक पूर्ण व्यक्तित्व के रूप में विकसित करने का प्रयास करता है। उपाध्याय के एकात्म मानववाद के सिद्धांत ने भारतीय संतों के सदियों पुराने ज्ञान से अपना मूल समर्थन प्राप्त किया है जिन्होंने कई हजार साल पहले मानव जाति के लिए इस ज्ञान को प्रकट किया था। वह लिखता है कि ष्मनुष्य, ईश्वर की सर्वोच्च

रचना, अपनी पहचान खो रहा है। हमें उसे उसकी सही स्थिति में फिर से स्थापित करना चाहिए, उसे उसकी महानता का एहसास दिलाना चाहिए, उसकी क्षमताओं को फिर से जगाना चाहिए और उसे परमात्मा को प्राप्त करने के लिए प्रयास करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। यह केवल एक विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था के माध्यम से संभव है। 'स्वदेशी' और 'विकेंद्रीकरण' दो शब्द हैं जो वर्तमान परिस्थितियों के लिए उपयुक्त आर्थिक नीति को संक्षेप में प्रस्तुत कर सकते हैं। पंडित उपाध्याय पूंजीवाद और साम्यवाद दोनों को खारिज करते हैं क्योंकि दोनों ही आर्थिक शक्ति के केंद्रीकरण से संबंधित हैं। पूंजीवाद में, धन का संकेंद्रण कुछ लोगों के हाथ में होता है और साम्यवाद के मामले में राज्य के हाथों में। दिलचस्प बात यह है कि उन्होंने यह साबित करने के लिए 'न्यू क्लास' का हवाला दिया कि कम्युनिस्ट देशों में 'नौकरशाही शोषकों का एक नया वर्ग अस्तित्व में आया है।'

जब सामाजिक विचारक व्यवहार और बुद्धि के आधार पर विभिन्न प्रकार के लोगों के बारे में बात करते हैं - आर्थिक आदमी, तकनीकी आदमी, चिंतनशील आदमी और आगे - एकात्म मानववाद एक व्यक्ति की कल्पना करता है। प्रत्येक पक्ष दूसरे से अलग होता है, प्रत्येक दूसरे के बिना अलग तरह से चमकते हुए अपना व्यवहार करता है। यह मनुष्य को ऊर्जा के चार केंद्रों - शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का गुण देता है, जिससे उसके सभी विविध विचारों और कार्यों की उत्पत्ति होती है। सभी चार केंद्र एक इंसान के अभिन्न अंग हैं, फिर भी वे समाज के मानदंडों और मनुष्य से अपेक्षाओं के अनुसार उनकी परिचालन तीव्रता में भिन्न होते हैं। एकात्म मानववाद मनुष्य की एक नई और क्रांतिकारी अवधारणा का उपयोग करने का पहला प्रयास करता है। विचार से आगे बढ़ते हुए, यह एक मानवीय, संवादात्मक, सहकारी सामाजिक-आर्थिक प्रणाली के कुछ विवरणों का निर्माण करने वाला पहला कदम है। उपाध्याय की दृष्टि में सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का मूल व्यक्ति की सही क्रिया है जो धर्म के अनुसार क्रिया है। वह धर्म को जन्मजात कानूनों के रूप में परिभाषित करता है जो उस इकाई के अस्तित्व और प्रगति को बनाए रखता है और आगे बढ़ाता है जिसकी वे सेवा करते हैं। प्रख्यात राजनीतिज्ञ और अधिवक्ता सुब्रमण्यम स्वामी एक निबंध में एकात्म मानववाद के दर्शन को व्यक्त करते हुए लिखा कि, ष्एकात्म मानववाद का उद्देश्य राष्ट्रीय विकास है, प्राथमिकताएं पुरुषार्थों के संतुलित विकास के माध्यम से मनुष्य की प्रधानता हैं, विकास रणनीति संघर्ष समाधान और सद्भाव है, संसाधन जुटाना ट्रस्टीशिप और तपस्या के माध्यम से है और संस्थागत ढांचा विकेंद्रीकरण और आत्मनिर्भरता हैष। पंडित उपाध्याय ने पश्चिमी विचारों को न केवल खारिज कर दिया, बल्कि यह तर्क दिया कि प्रत्येक राष्ट्र का एक अनूठा राष्ट्रीय आदर्श होता है, जो उसके भौतिक वातावरण और सामूहिक अनुभव से आकार लेता है, जो उसके राजनीतिक और सामाजिक जीवन को सूचित करना चाहिए। एकात्म मानववाद की अवधारणा को प्रस्तुत कर दीनदयाल उपाध्याय ने दुनिया के सामने एक नया मौलिक वैकल्पिक वैचारिक ढाँचा रखा है। सरकार के विभिन्न रूपों में उन्होंने लोकतंत्र को सबसे स्वाभाविक माना क्योंकि यह राष्ट्र को उसके भाग्य को आकार देने में एक सीधी आवाज देता है। 1965 में एकात्म मानववाद की उनकी अवधारणा पर आधारित जनसंघ के सिद्धांतों के वक्तव्य ने आगाह किया कि राजनीतिक लोकतंत्र एक दिखावा है जब तक कि इसके साथ सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र न हो।

PURVA MIMAANSA

2. अंत्योदय संबंधी विचार

पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने अंत्योदय का विचार प्रतिपादित किया जिसका अर्थ है पंक्ति मंख खड़े अंतिम मनुष्य का कल्याण। दीनदयाल उपाध्याय ने आम आदमी के उत्थान के लिए बहुत कुछ बोला और लिखा। उनका मानना था कि राजनीति का पूरा उद्देश्य गरीबों और हाशिए पर पड़े लोगों के लिए काम करना है। दीन दयाल की प्रेरणा का स्रोत गरीब, असहाय, परंपरा से बंधे आम आदमी थे जिन्होंने सदियों के विदेशी आक्रमण और कुशासन को झेला और राष्ट्र की आत्मा को जीवित रखा। अपने अधिकांश राजनीतिक वक्तव्यों में वे इस बात से आश्वस्त दिखाई देते थे कि देश का भविष्य इस आम आदमी के हाथों में है और उन्हें लगा कि उन्हें आधुनिक वास्तविकताओं से परिचित कराना बहुत आवश्यक है। उन्होंने स्वयं लिखा था कि ष्मैं अपने देश की उन्नति का आकलन इस बात से नहीं करूंगा कि सरकार ने क्या किया या वैज्ञानिकों ने क्या हासिल किया, लेकिन मैं अपने देश की प्रगति का आकलन गांव में आदमी की प्रगति के संदर्भ में, उसकी क्षमता के संदर्भ में करूंगा कि वे अपने बच्चों को बेहतर जीवन प्रदान करने के लिए कितने सक्षम हैं।ष उन्होंने इन लक्ष्यों को प्राप्त करने की मांग करते हुए खुद को कर्म योगी घोषित किया और उन्होंने सभी को इसी तरह कार्य करने के लिए कहा। सन् 1967 में अपने अध्यक्षीय भाषण में, उन्होंने गरीबों और शक्तिहीनों के लिए समर्थन की एक कड़ी अभिव्यक्ति के साथ निष्कर्ष निकाला कि ष्हर देशवासी हमारे खून का खून और मांस का मांस है। हम तब तक आराम नहीं करेंगे, जब तक हम सभी को गर्व की भावना देने में सक्षम नहीं हो, कि वे भी भारतमाता के बच्चे हैं। हम भारत माता को सुजला, सुफला (फलों से लदी और पानी से सराबोर) इन शब्दों के वास्तविक अर्थों में बनाएंगे।'

3. समाजवाद संबंधी विचार

दीनदयाल उपाध्याय की नजरों में दुनिया की समस्याओं का समाधान समाजवाद नहीं बल्कि हिंदू धर्म में है। यही जीवन का एक मात्र दर्शन है जो जीवन को समग्र मानता है, न कि टुकड़ों में। साथ ही यह मानना एक बड़ी भूल होगी कि हिंदू धर्म आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति के खिलाफ है। समाजवाद स्वीकार करता है कि संघर्ष से ही सभी वस्तुओं को प्राप्त किया जा सकता है, जो सही नहीं है। विज्ञान और मशीन दोनों का उपयोग हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के अनुसार किया जाना चाहिए। आज समाजवाद की चर्चा हर तरफ हो रही है और इसे लोगों के लिए सबसे लाभकारी प्रणाली माना जा रहा है। समाजवाद का अर्थ है उत्पादन और वितरण के सभी साधनों पर राज्य का नियंत्रण। ऐसी स्थिति में लोग मजदूरों की स्थिति में सिमट कर रह जाते हैं। कोई स्वतंत्र स्वामित्व नहीं है। ऐसे समाजवाद को स्थापित करने के लिए वर्ग संघर्ष और खूनी क्रांति का आह्वान किया जाता है। इस समाजवाद को शांतिपूर्ण ढंग से लाने का भी प्रयास किया जाता है। लेकिन चूंकि यह व्यवस्था व्यक्ति और समाज के बीच संघर्ष को स्वीकार करती है और व्यक्ति की स्वतंत्रता को सीमित करती है, इसके तहत मनुष्य केवल एक मशीन का हिस्सा बन जाता है। ऐसे समाजवाद के तहत व्यक्ति और समाज के बीच का संबंध भारतीय संस्कृति और परंपरा के अनुरूप नहीं है। हम इस प्रकार के समाजवादी नहीं हैं, न ही हम पश्चिमी अर्थों में व्यक्तिवादी हैं। हमारे उपनिषद कहते हैं कि जो व्यक्ति पर ध्यान केंद्रित करता है वह अंधकार को प्राप्त करता है, और जो केवल सामूहिक पूजा करता है वह भी उसी तरह जाता है। भारतीय प्रणाली दोनों के मिश्रण की मांग करती है। हमारा प्रयास है कि व्यष्टि को

समष्टि में मिला दिया जाए, क्योंकि व्यक्ति मर सकता है लेकिन समाज कभी नहीं। हम संश्लेषण चाहते हैं हम व्यक्तिवादी हैं और समाज के लिए भी खड़े हैं। भारतीय दर्शन के अनुसार हम व्यक्ति की उपेक्षा न करते हुए भी समाज के हित की ओर देखते हैं। क्योंकि हम समाज की परवाह करते हैं, हम उस अर्थ में श्समाजवादीश हैं, क्योंकि हम व्यक्तिगत व्यक्तिवादियों की उपेक्षा नहीं करते हैं। इसके साथ साथ हम व्यक्ति को हर समय सर्वोच्च भी नहीं मानते हैं, इसलिए कहा जाता है कि हम व्यक्तिवादी नहीं हैं। दूसरी ओर हम यह भी नहीं सोचते हैं कि समाज व्यक्ति को उसकी सभी स्वतंत्रताओं और विशिष्टताओं से वंचित कर दे। हम मशीन के एक हिस्से के रूप में इस्तेमाल किए जा रहे व्यक्ति के खिलाफ हैं और इस मायने में हम समाजवादी नहीं हैं। हमारा विश्वास है कि व्यक्ति के बिना समाज की कल्पना नहीं की जा सकती और न ही समाज के बिना व्यक्ति का कोई मूल्य हो सकता है। इसलिए हम दोनों का संश्लेषण चाहते हैं। अविभाज्य भारत इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि व्यक्ति और समाज को परस्पर अंतर्विरोध मानना गलत है। बेशक अगर कोई विकृति या व्यवस्था की कमी है तो उसे दूर करने के लिए कदम उठाना जरूरी है। लेकिन मूल सत्य यह है कि व्यक्ति और समाज एक हैं और अविभाज्य हैं। एक सुसंस्कृत स्थिति में व्यक्ति स्वयं के बारे में सोचते हुए भी समाज के बारे में सोचेगा। अगर कोई समाज को नुकसान पहुंचाकर अपना भला करने की सोचता है तो वह गलत दिशा में सोच रहा होगा। यह विकृति की स्थिति है और इससे व्यक्ति की भलाई भी नहीं होगी क्योंकि व्यक्ति को उस स्थिति को भुगतना होगा जिसमें समाज खुद को पाता है।

4. राजनीतिक दर्शन संबंधी विचार

पंडित उपाध्याय बीसवीं सदी के महान विचारक और राजनेता थे जिन्होंने भारतीय राजनीति में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने का प्रयास किया। एक महानायक की भांति भारत की सभ्यता, संस्कृति और परम्परा को सहजने का अतुल्य प्रयास किया। वह भारत की प्रकृति और परंपरा के अनुरूप एक राजनीतिक दर्शन विकसित करना चाहते थे, जो भारत की सर्वांगीण प्रगति सुनिश्चित कर सके। उन्होंने श्एकात्म मानववादश के राजनीतिक दर्शन को प्रतिपादित किया जो भारतीय जन संघ और बाद में भाजपा के प्रत्येक कार्यकर्ता के लिए आधारशिला बन गया। उनका मानना था कि भारतीय राजनीति को भारत की संस्कृति और जीवन दर्शन से अलग करके नहीं देखा जा सकता। समाजवाद और लोकतंत्र दोनों वर्ग-संघर्ष के परिणाम हैं। यद्यपि दोनों का उद्देश्य इस संघर्ष को समाप्त करना और एकता स्थापित करना है, जिस तरह से उन्होंने इस उद्देश्य के लिए अपनाया है, उसने केवल इन वर्गों का रूप बदला है, उन्हें समाप्त नहीं किया है और इसलिए यह संघर्ष और भी तीव्र हो गया है। लोकतंत्र ने माना कि राजा और प्रजा के बीच का संघर्ष शाश्वत है और इसलिए इसने राजा को समाप्त कर दिया। लेकिन लोगों के विभिन्न वर्गों के बीच संघर्ष को लोकतंत्र ने स्थायी रूप से स्वीकार कर लिया है। समाजवाद ने धनवानों और अपाहिजों के बीच के संघर्ष को अपना आधार बनाया। वर्ग बदल गए लेकिन संघर्ष समाप्त नहीं हुआ, क्योंकि पश्चिम के विचार की सभी प्रणालियां डार्विन के सबसे श्योग्य के अस्तित्व के सिद्धांतश से निकलती हैं। संसार संघर्ष के कारण नहीं बल्कि समन्वय और सहयोग से चलता है। यदि आप एक लोकतांत्रिक हैं तो किसी और के द्वारा नहीं बल्कि अपनी अंतरात्मा के द्वारा निर्देशित किया जाए। जनता के लिए खड़े होने वाले राजनीतिक दल भी जनता के बल पर खड़े होते हैं। अगर लोग चाहते हैं कि कोई उन्हें झुकाए नहीं तो लोगों को उन्हें अपनी ताकत देनी

चाहिए। यह लोग ही हैं जो राजनीतिक दलों के निर्माता हैं, और उनके माध्यम से उनके राजनीतिक भाग्य का निर्माण करते हैं। एक अच्छी पार्टी कौन सी है? स्पष्ट रूप से वह जो केवल व्यक्तियों का एक संग्रह नहीं है, बल्कि एक विशिष्ट उद्देश्यपूर्ण अस्तित्व वाला एक निकाय है जो सत्ता पर कब्जा करने की अपनी इच्छा से अलग है। ऐसी पार्टी के सदस्यों के लिए राजनीतिक सत्ता एक साधन नहीं होनी चाहिए। पार्टी के रैंक और फाइल में एक कारण के प्रति समर्पण होना चाहिए। भक्ति समर्पण और अनुशासन की ओर ले जाती है। एक पार्टी के लिए अनुशासन वही है जो एक समाज के लिए धर्म है। विभिन्न राजनीतिक दलों को अपने लिए एक दर्शन विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। उन्हें कुछ स्वार्थी उद्देश्यों के लिए एक साथ जुड़े व्यक्तियों का समूह मात्र न बनने दें। यह भी आवश्यक है कि दल के दर्शन को दल के घोषणापत्र के पन्नों तक ही सीमित न रखा जाए। सदस्यों को इसे समझना चाहिए और इसे अमल में लाने के लिए खुद को समर्पित करना चाहिए।

अनुशासन का प्रश्न न केवल दल को पूर्ण स्वास्थ्य में रखने के लिए महत्वपूर्ण है बल्कि सामान्य रूप से लोगों के आचरण पर इसके प्रभाव के कारण भी महत्वपूर्ण है। एक सरकार मुख्य रूप से संरक्षण और सुरक्षा का एक साधन है न कि विनाश या परिवर्तन का। यह लोगों में कानून के प्रति श्रद्धा पैदा करने की मांग है कि कानून के संरक्षक बनने की इच्छा रखने वाले पक्ष खुद इस दिशा में एक उदाहरण पेश करें। लोकतंत्र का सार स्वशासन की भावना और क्षमता है। यदि दल स्वयं शासन नहीं कर सकते हैं तो वे समुदाय में स्वशासन की इच्छा उत्पन्न करने की आशा कैसे कर सकते हैं? जहां एक ओर समुदाय के लिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता की गारंटी और रक्षा करना आवश्यक है, वहीं दूसरी ओर व्यक्ति के लिए स्वेच्छा से सामान्य इच्छा को प्रस्तुत करना वांछनीय है। इसलिए दलों के लिए यह आवश्यक है कि वे अपने सदस्यों के लिए एक आचार संहिता निर्धारित करें और उसका सख्ती से पालन करें। निर्वाचक का कर्तव्य एक बुरा उम्मीदवार का विरोध करना है क्योंकि वह यह दावा नहीं कर सकता, कि वह जिस पार्टी से संबंधित है वह अच्छी है। वोट एक जनादेश है लोगों को यह भी महसूस करना चाहिए कि वोट किसी भी उम्मीदवार के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने का एक साधन नहीं है, बल्कि उनकी इच्छाओं को पूरा करने के लिए एक जनादेश है।

5. अखंड भारत और राष्ट्रवाद संबंधी विचार

श्अखंड भारतश (अविभाजित भारत) में राष्ट्रवाद के वे सभी बुनियादी मूल्य और एक अभिन्न संस्कृति शामिल है जिसे जनसंघ ने स्वीकार किया है। इन शब्दों में यह भावना शामिल है कि अटक से कटक तक, कच्छ से कामरूप तक और कश्मीर से कन्याकुमारी तक यह पूरी भूमि न केवल हमारे लिए पवित्र है, बल्कि हमारा एक हिस्सा है। अनादि काल से इसमें जन्म लेने वाले और अभी भी इसमें रहने वाले लोगों में भले ही समय और स्थान के आधार पर सतही तौर पर पैदा हुए तमाम मतभेद हों, लेकिन उनके पूरे जीवन की बुनियादी एकता श्अखंड भारतश के हर भक्त में देखी जा सकती है। भारत का विभाजन अप्राकृतिक है, लेकिन सवाल यह उठता है कि विभाजित भारत का अप्राकृतिक इतिहास क्या है? इतिहास जीवन की मूलभूत एकता की प्राप्ति के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करने का एक रचनात्मक प्रयास है। इस एकता को साकार करने में दासता सबसे बड़ी बाधा थी। इसलिए हमने इसके खिलाफ लड़ाई लड़ी। स्वतंत्रता को इस अहसास में मदद करनी चाहिए थी। लेकिन ऐसा नहीं हुआ, इसलिए हम दुखी हैं। आज

हमारे जीवन में परस्पर विरोधी भावनाओं का टकराव है। श्अखंड भारतश हमारे राष्ट्र की प्रकृति में है। विभाजित भारत अप्राकृतिक है। आज हम अपने आप को धोखा देने की कोशिश करते हैं कि हम इस अप्राकृतिक स्थिति में आनंद लेते हैं, लेकिन हमारे लिए कोई खुशी नहीं है। यदि हम इस सत्य को स्वीकार कर लें, तो हम इस आंतरिक संघर्ष से मुक्त हो जाएंगे और हमारे प्रयास एकजुट और मजबूत हो जाएंगे। मुस्लिम समुदाय का अलगाववादी और राष्ट्र विरोधी रवैया अखंड भारत के लिए सबसे बड़ी बाधा है। पाकिस्तान का निर्माण इसी रवैये की जीत है। जिन्हें अखण्ड भारत पर संदेह है उन्हें लगता है कि मुसलमान अपनी नीति नहीं बदलेगा। यदि ऐसा है, तो भारत में छह करोड़ मुसलमानों का बने रहना भारत के हित के लिए अत्यधिक हानिकारक होगा। क्या कोई कांग्रेसी यह कहेगा कि मुसलमानों को भारत से बाहर कर दिया जाना चाहिए? यदि नहीं, तो उन्हें इस देश के राष्ट्रीय जीवन में आत्मसात करना होगा। अगर यह देश एकता की भावना के अभाव में बंट गया तो वही एकता की भावना फिर साथ ला सकती है। इसके लिए हमें प्रयास करना चाहिए। पाकिस्तान के अस्तित्व ने इस देश की राजनीतिक स्वतंत्रता को विभाजित कर दिया है, इसे एक अलग स्वतंत्र राज्य मानना गलत होगा। यह उस दृष्टिकोण और परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है जो भारत के राष्ट्रीय व्यक्तित्व को समाप्त करना चाहता है और एक विदेशी शासन और विदेशी मूल्यों की स्थापना करना चाहता है। इसलिए पाकिस्तान भारत की गुलामी का अवशेष है। जब तक हम वहां के अपने भाईयों को इस गुलामी से मुक्त नहीं कराएंगे, तब तक हमारी राजनीतिक स्वतंत्रता अधूरी रहेगी।

6. लोकतांत्रिक व्यवस्था संबंधी विचार

वाद-विवाद लोकतंत्र का अभिन्न अंग है, लेकिन ऐसी बहस तभी फलदायी हो सकती है जब प्रत्येक पक्ष ध्यान से सुनता है कि दूसरे को क्या कहना है और उसमें सच्चाई को स्वीकार करने की इच्छा है। यदि हम दूसरे व्यक्ति के दृष्टिकोण को समझने की कोशिश करने के बजाय अपने स्वयं के दृष्टिकोण पर जोर देते हैं तो ऐसी बहस निष्फल रहनी चाहिए। सार्थक बहस सत्य की प्राप्ति के लिए एक साधन है। हम मानते हैं कि सत्य एकतरफा नहीं है और इसके विभिन्न पहलुओं को विभिन्न कोणों से देखा, परखा और अनुभव किया जा सकता है। इसलिए वह जो सभी में अंतर्निहित एकता का व्यापक दृष्टिकोण रखने की क्षमता रखता है ऐसी विविधता एक द्रष्टा है। संस्कारों के बिना लोकतंत्र में व्यक्ति और समाज के बीच कोई संघर्ष नहीं है, यदि यह मौजूद है, तो यह एक विपथन है। समाज के हित में व्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाना आवश्यक है। वास्तव में बेलगाम स्वतंत्रता व्यक्ति का विकास नहीं, उसका विनाश होता है। समाज के साथ व्यक्ति की पूर्ण पहचान ही व्यक्ति के पूर्ण विकास की स्थिति है। व्यक्ति ही समाज की पूर्णता का माध्यम और माप है। व्यक्ति की स्वतंत्रता और समाज के हित परस्पर विरोधी नहीं हैं। लोकतंत्र लोगों के कर्तव्य की पूर्ति के लिए एक उपकरण है। साधन की प्रभावशीलता लोगों के जीवन में राष्ट्र की भावना, जिम्मेदारी की चेतना और अनुशासन पर निर्भर करती है। यदि ये संस्कार नागरिक में अनुपस्थित हैं, तो लोकतंत्र व्यक्ति, वर्ग और दल के हित के साधन के रूप में पतित हो जाता है। एक व्यक्ति या संस्था में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक शक्तियों का केंद्रीकरण लोकतंत्र के रास्ते में एक बाधा है। आम तौर पर जब एक निश्चित क्षेत्र में शक्ति एक व्यक्ति में केंद्रित हो जाती है तो व्यक्ति प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपने हाथों में शक्ति को अन्य क्षेत्रों में भी केंद्रित करने का प्रयास करता है। आम तौर पर प्रशासन की विभिन्न इकाइयों को प्रशासन से संबंधित

होना चाहिए और अर्थशास्त्र के क्षेत्र में प्रवेश नहीं करना चाहिए। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था पहले आर्थिक क्षेत्र में सत्ता प्राप्त करती है और फिर राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश करती है, जबकि समाजवाद राज्य के हाथों में उत्पादन के सभी साधनों पर शक्ति केंद्रित करता है। ये दोनों प्रणालियाँ व्यक्ति के लोकतांत्रिक अधिकारों और उनके समुचित विकास के विरुद्ध हैं। इसलिए केंद्रीकरण के साथ-साथ हमें शक्तियों के विभाजन के बारे में भी सोचना होगा। हमारे पूरे जीवन को पश्चिम में विकसित लोकतंत्र की संस्थाओं और परंपराओं में, या मार्क्स द्वारा प्रतिपादित और लेनिन, स्टालिन आदि द्वारा प्रचलित समाजवाद के तैयार किए गए सांचों में डालना उचित नहीं होगा। इस देश का जीवन इन दोनों विचारों की तुलना में उच्चतर है। हमें भारत पर पश्चिमी राजनीति थोपने के बजाय अपना राजनीतिक दर्शन विकसित करना होगा। ऐसा करते हुए हम पश्चिम में की गई सोच से लाभ उठा सकते हैं। लेकिन हमें न तो इससे अभिभूत होना चाहिए और न ही इसे शाश्वत सत्य मानना चाहिए। लोकतंत्र और राजनीतिक दल स्वराज की परिभाषा में तीन मुख्य बातें शामिल हैं। प्रथम, सरकार उन लोगों के हाथ में हो जो देश का हिस्सा हैं। द्वितीय, सरकार राष्ट्रहित में चलनी चाहिए, जिससे उसकी नीतियां राष्ट्रहित की ओर उन्मुख हों। तृतीय, ऐसी सरकार के पास राष्ट्र की भलाई के लिए अपनी ताकत होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में आत्मनिर्भरता के बिना स्वराज की कल्पना करना भी गलत है। जब सरकार देशवासियों के हाथ में हो तब भी स्वराज अर्थहीन हो सकता है यदि सरकार किसी अन्य राष्ट्र की अनुयायी बन जाये। यदि राज्य रक्षा के मामले में आत्मनिर्भर नहीं है, अपनी नीतियों के संबंध में स्वतंत्र और आर्थिक नियोजन के संबंध में आत्मनिर्भर नहीं है, तो उस पर राष्ट्र के हित के खिलाफ काम करने का दबाव डाला जा सकता है।

7. आर्थिक व्यवस्था संबंधी विचार

'स्वदेशी' और 'विकेंद्रीकरण' दो शब्द हैं जो वर्तमान परिस्थितियों के लिए उपयुक्त आर्थिक नीति को संक्षेप में प्रस्तुत कर सकते हैं। योजनाकार इस धारणा के कैदी बन गए हैं कि केवल बड़े पैमाने पर केंद्रीकृत उद्योग ही आर्थिक रूप से समृद्ध है और इसलिए इसके दुष्प्रभावों की चिंता किए बिना, या जानबूझकर लेकिन असहाय रूप से वे उस दिशा में जारी रहे हैं। 'स्वदेशी' के साथ भी ऐसा ही हुआ है। ष्स्वदेशीष की अवधारणा को पुराने जमाने की कहकर प्रतिक्रिया के रूप में उसका उपहास किया जाता है। हम हर चीज में विदेशी सहायता का उपयोग गर्व से करते हैं, सोच, प्रबंधन, पूंजी, उत्पादन के तरीके, प्रौद्योगिकी से लेकर यहां तक कि उपभोग के मानकों और रूपों तक। यह प्रगति और विकास का मार्ग नहीं है। 'स्वदेशी' की सकारात्मक सामाग्री को हमारी अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण की आधारशिला के रूप में इस्तेमाल किया जाना चाहिए। पश्चिमी अर्थव्यवस्था पर निर्भरता न केवल जीवन के विभिन्न आदर्शों के कारण बल्कि समय और स्थान के संदर्भ में विभिन्न परिस्थितियों के कारण भी हमारे आर्थिक विकास के मार्ग में बाधक है, इसलिए हमें बुनियादी तौर पर पश्चिम से अलग होना होगा। पश्चिमी अर्थशास्त्रियों ने इतना आलोचनात्मक साहित्य तैयार किया है कि हम आसानी से इससे अभिभूत हुए बिना नहीं रह सकते। यह संभव है कि अर्थशास्त्र के विज्ञान में कुछ सिद्धांत हो सकते हैं जो समय, स्थान या व्यवस्था पर निर्भर नहीं होते हैं और सभी के लिए उपयोगी साबित हो सकते हैं, लेकिन बहुत कम लोगों में इस गुण का आकलन करने की क्षमता होती है। हमारे अर्थशास्त्री पश्चिमी अर्थशास्त्र के विशेषज्ञ हो सकते हैं, लेकिन वे

इसमें कोई ठोस योगदान नहीं दे पाए हैं क्योंकि भारतीय अर्थव्यवस्था उन्हें न तो आवश्यक विचार प्रदान कर सकती है और न ही प्रयोग के लिए आवश्यक क्षेत्र। कोई भी अधिकार शाश्वत नहीं है, चाहे वह संपत्ति से ही संबंधित हो या अन्य चीजों से, शाश्वत नहीं है। वे सभी समाज के हित पर निर्भर हैं। वास्तव में ये अधिकार व्यक्ति को दिए जाते हैं ताकि वह अपने सामाजिक कर्तव्यों का पालन कर सके। एक सैनिक को हथियार इसलिए दिए जाते हैं कि उसका कर्तव्य समाज की रक्षा करना है। यदि वह अपना कर्तव्य नहीं करता है तो वह शस्त्र धारण करने का अधिकार खो देता है। इसी तरह संपत्ति का अधिकार एक व्यक्ति को दिया जाता है ताकि वह समाज द्वारा निर्धारित अपना कर्तव्य निभा सके। इस प्रयोजन के लिए इन अधिकारों को समय-समय पर परिभाषित और संशोधित करना आवश्यक हो जाता है। संपत्ति का कोई भी अधिकार समाज का पूर्ण अधिकार नहीं है।

स्वामित्व का अधिकार वास्तव में एक निश्चित सीमा के भीतर और एक निश्चित उद्देश्य के लिए किसी विशेष वस्तु का उपयोग करने का अधिकार है। ये अधिकार समय के साथ बदलते रहते हैं। इसलिए सिद्धांत रूप में हम व्यक्ति के अधिकारों और समाज के अधिकार के बीच के झगड़े में नहीं फंस सकते। हमारे लिए राज्य ही समाज का एकमात्र रूप नहीं है। हम मानते हैं कि व्यक्ति, परिवार, समुदाय, राज्य सभी अलग-अलग रूप हैं जिनमें समाज खुद को अभिव्यक्त करता है और पूरा करता है। संयुक्त परिवार इस देश में व्यावहारिक इकाई है जिसमें हम व्यक्ति में सामाजिक भावना को संरक्षित करना चाहते हैं, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को कमाने का अधिकार है, लेकिन स्वामित्व का अधिकार परिवार में निहित है। धन का उपयोग परिवार के लाभ के लिए किया जाता है। यह ट्रस्टीशिप का भारतीय सिद्धांत है जिसे गांधीजी और अन्य विचारकों ने प्रतिपादित किया है। भोजन का अधिकार आजकल आम तौर पर सुना जाने वाला नारा है ष्अपनी रोटी कमाना चाहिएष। आम तौर पर कम्युनिस्ट इस नारे का इस्तेमाल करते हैं, लेकिन पूंजीपति भी इससे बुनियादी तौर पर असहमत नहीं हैं। यदि उनमें कोई अंतर है, तो यह केवल इस संबंध में है कि कौन कमाता है और कितना कमाता है। पूंजीपति पूंजी और उद्यम को उत्पादन के महत्वपूर्ण कारक मानते हैं और यदि वे लाभ का एक बड़ा हिस्सा लेते हैं, तो ऐसा इसलिए है क्योंकि उन्हें लगता है कि यह उनका देय है। दूसरी ओर, कम्युनिस्ट केवल श्रम को ही उत्पादन का मुख्य कारक मानते हैं। इसलिए वे उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा मजदूरों को देते हैं। इनमें से कोई भी विचार सही नहीं है। सख्ती से कहा जाए तो हमारा नारा होना चाहिए कि जो कमाएगा वह खिलाएगा और हर व्यक्ति के पास खाने के लिए पर्याप्त होगा। भोजन का अधिकार जन्मसिद्ध अधिकार है। कमाने की क्षमता शिक्षा और प्रशिक्षण का परिणाम है। समाज में कमाने वालों को भी भोजन अवश्य करना चाहिए। बच्चों, बूढ़ों, बीमारों, विकलांगों, सभी की देखभाल समाज द्वारा की जानी चाहिए।

लेकिन समय बीतने के साथ हम विदेशी स्रोतों पर अधिक निर्भर होते गए हैं। हमें डर है कि वर्तमान में पर्याप्त मात्रा में भोजन की उपलब्धता के कारण सरकार स्थानीय स्तर पर उत्पादन बढ़ाने के उनके प्रयासों में आत्मसंतुष्ट हो सकती है। यह तभी संभव है जब हम ष्विदेशी भोजन से मुक्तिष के अपने पुराने नारे को पुनर्जीवित करें। विदेशी स्रोतों पर निर्भरता हमें दरिद्र बनाएगी और उलझाएगी। नि:संदेह सभी के लिए एक वोट राजनीतिक लोकतंत्र की कसौटी है, तो सभी के लिए काम करना आर्थिक लोकतंत्र का एक पैमाना है। इस दृष्टि से न्यूनतम मजदूरी, वितरण की एक न्यायसंगत प्रणाली और सभी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा

आवश्यक है। काम केवल व्यक्ति की आजीविका का साधन ही नहीं होना चाहिए बल्कि वह उस व्यक्ति की पसंद का होना चाहिए, ताकि वह अपने आप को स्वतंत्र अनुभव कर सकें।

निष्कर्ष

नि:संदेह भारतीय राजनीतिक चितंन में दीनदयाल उपाध्याय ने जनसंघ की विचारधारा को एक संगठन का रूप देने में अविस्मरणीय भूमिका निभाई। इसमें कोई अतिशयोक्ति भी नहीं है। भारतीय राजनीति में उपाध्याय का योगदान मुख्य रूप से पार्टी निर्माण के क्षेत्र में माना जाता है, क्योंकि उन्होंने लगभग पंद्रह वर्षों तक पार्टी सचिव के रूप में काम किया और अपने संगठनात्मक कौशल के बल पर उन्होंने जनसंघ को एक महत्वपूर्ण राजनीतिक ताकत में बदल दिया। वह निश्चित रूप से भारतीय राजनीतिक चिंतन और राजनीतिक मुद्दों में गहरी रूचि रखने वाले व्यक्ति थे। दीनदयाल उपाध्याय के राजनीतिक एवं सामाजिक चितंन की मूल अवधारणा एकात्म मानववाद के विचार के साथ जुड़ी हुई है। उपाध्याय ने दिसंबर 1967 में कालीकट में जनसंघ के चौदहवें वार्षिक सत्र में अपने अध्यक्षीय भाषण में व्यावहारिक राजनीति में एकात्म मानववाद को लागू करने पर जोर दिया। किंतु उनकी असामयिक मृत्यु ने इन बुनियादी सिद्धांतों पर विस्तार से चर्चा के लिए आगे के प्रयासों को कम कर दिया। लेकिन पार्टी में जिन लोगों को उनकी विचारधारा विरासत के रूप में मिली, उन्होंने इस संबंध में उनके प्रयासों को जारी रखा और नतीजतन, यह विचारधारा राजनीतिक समीक्षा करने के लिए एक उपयोगी शस्त्र साबित हुई। राजनीतिक दार्शनिक का कार्य यह स्पष्ट करना है कि मनुष्य का स्वभाव वास्तव में कैसा हो? इस आधार पर एक अच्छी राजनीतिक व्यवस्था की शर्तों को परिभाषित किया जा सकता है। उनका मानना था कि पश्चिमी सामाजिक, राजनीतिक विचार के प्रमुख स्कूल पश्चिम में ही मानवीय स्थिति को मौलिक रूप से सुधारने में विफल रहे हैं। इस कारण उनका मानना था कि राष्ट्रवाद, लोकतंत्र और समाजवाद, उनकी राय में, कई भारतीयों द्वारा अनजाने में स्वीकार किए गए थे। इन्होंने अच्छे जीवन के लिए मानवीय खोज को केवल आंशिक समाधान ही प्रदान किये हैं और राष्ट्रवाद ने विश्व शांति के लिए खतरा ही पैदा कर दिया। जब लोकतंत्र को पूंजीवाद से जोड़ा गया, तो उसने शोषण को शासन के साथ जोड़ दिया। समाजवाद, लोकतंत्र-पूंजीवाद से जुड़ी अवधारणा की प्रतिक्रिया ने व्यक्ति की गरिमा और स्वतंत्रता को लूट लिया है। इन राजनीतिक अवधारणाओं में से प्रत्येक पर बल देते हुए उन्होंने कहा था, कि इन अवधारणाओं ने भौतिक अधिग्रहण को बढ़ा दिया। इस तरह लालच, वर्ग विरोध, शोषण और सामाजिक अराजकता को प्रेरित किया। इसके परिणामस्वरूप उन्होंने न केवल सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की विचारधारा के लिए एक कैडर तैयार किया बल्कि अपने द्वारा प्रतिपादित आदर्शों को साकार करने के लिए संगठन का एक मजबूत आधार भी दिया। वर्तमान समय में निस्संदेह उपाध्याय जी ने जिस पार्टी की स्थापना हेतु प्रयास किया था, वह अब पूर्ण बहुमत के साथ न केवल केंद्रीय स्तर पर सत्ता में है, बल्कि आधे से अधिक राज्यों में भी उसकी सरकारें हैं। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी श्सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वासश के मूल मंत्र के साथ लगातार काम कर रहे हैं, जो कि अंत्योदय के इक्कीसवीं सदी के विचार के अलावा ओर कुछ नहीं है। यह विचार उपाध्याय द्वारा आधी सदी पहले प्रतिपादित किया गया था। वर्तमान भाजपा सरकार के कार्यक्रम और नीतियां दीनदयाल उपाध्याय के आदर्शों की कल्पना करते हैं जिन्हें अब प्रधान मंत्री मोदी के नेतृत्व वाली सरकार साकार करने का प्रयास कर रही हैं। वर्तमान

सरकार समाज के वंचित वर्गों को सशक्त बनाने और सभी के लिए सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए सभी प्रयास कर रही है, तो दीनदयाल उपाध्याय के विचारों का अध्ययन करना अधिक अनिवार्य हो जाता है। अत: वर्तमान राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में उपाध्याय के विचारों की महत्ता ओर ज्यादा बढ गई है, क्योंकि उनका दर्शन इस मिट्टी में गहराई से निहित है और उनके दर्शन के निशान इस देश के सांस्कृतिक लोकाचार में पाए जा सकते हैं जो हजारों साल पुराने हैं।

संदर्भ:-

उपाध्याय, दीनदयाल, एकात्म मानववाद, जागृति प्रकाशन, नोएडा, 1986.

उपाध्याय, दीनदयाल, दीनदयाल उपाध्याय: सम्पूर्ण वांग्मय, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016.

उपाध्याय, दीनदयाल, पोलिटिकल डायरी, सुरुचि प्रकाशन, झंडेवाला, नई दिल्ली, 1986.

उपाध्याय, दीनदयाल, राष्ट्र जीवन की दिशा, राष्ट्र धर्म पुस्तक प्रकाशन, लखनऊ, 2004.

कुलकर्णी, शरद अनंत, पं. दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन, खण्ड-4, एकात्म अर्थनीति, सुरुचि प्रकाशन, झंडेवाला, नई दिल्ली, 1986.

केसरी, अर्जून दास, भारतीय संस्कृति के प्रबल पक्षधर: पं. दीनदयाल उपाध्याय, उत्तर प्रदेश संदेश, सूचना एवं जनसंपर्क विभाग, उत्तर प्रदेश, सितंबर 1991.

गोयनका, कमल किशोर (ईडी.), पंडित दीनदयाल उपाध्याय: ऐ प्रोफाइल, दीनदयाल रिशर्च इन्स्टीट्यूट, नई दिल्ली, 1972.

गोयनका, कमल किशोर (संपादित), पंडित दीनदयाल उपाध्याय: व्यक्ति दर्शन, दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली, 1972.

ठेंगड़ी, दत्तोपंत, पं. दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन, खण्ड-1, तत्व जिज्ञासा, सुरुचि प्रकाशन, झंडेवाला, नई दिल्ली, 2014.

दुबे, सी. एम., पं. दीनदयाल उपाध्याय: दी प्राइड ऑफ नेशन, पाण्डुलिपि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020.

देवधर, विश्वनाथ नारायण, पं. दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन, खण्ड-7, व्यक्ति दर्शन, सुरुचि प्रकाशन, झंडेवाला, नई दिल्ली, 1986.

पाठक, विनोद चन्द, पं. दीनदयाल उपाध्याय का राजनीतिक चिंतन, सत्यम पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2009.

बख्शी, शिव शक्ति नाथ, दीनदयाल उपाध्याय: लाइफ आफ एन आइडियोलॉजी पालिटिशियन, रूपा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2018.

भारद्वाज, राजकुमार, दीनदयाल उपाध्याय: रचना संचयन, मेधा पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2019.

सिंह, अमरजीत, एकात्म मानववाद के प्रणेता: दीनदयाल उपाध्याय, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018.

सिंह, मनोज के., पण्डित दीनदयाल उपाध्याय, कोशिक पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2020.

शर्मा, महेशचंद्र, दीनदयाल उपाध्याय: आधुनिक भारत के निर्माता, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली, 2002.

PURVA MIMAANSA

शर्मा, महेशचंद्र, दीनदयाल उपाध्याय: कर्तव्य एवं विचार, वसुधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1994.

शर्मा, महेशचंद्र, दीनदयाल उपाध्याय: कृतित्व एवं व्यक्तित्व, नई दिल्ली, 1991.

शर्मा, महेशचंद्र (संपादित), दीनदयाल उपाध्याय: सम्पूर्ण वांग्मय, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016.

शर्मा, विजय दत्त (संपादित), पंडित दीनदयाल उपाध्याय: एक विलक्षण व्यक्तित्व, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला, 2017.

PURVA MIMAANSA